Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

अविमृष्टविधेयांश दोष विमर्श: एक अनुशीलन

रागिनी शुक्ला
शोधच्छात्रा
संस्कृत विभाग, दिल्लीविश्वविद्यालय,दिल्ली,भारत।

शोध आलेख सार– परम्परा के गहनतम् अनुशीनल से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मानव की सर्जना में दोषों का रह जाना स्वाभाविक है कारण यह कि मनुष्य प्रायः अज्ञ है और उसकी मति अज्ञता रूपी भंवर से उतकर पूर्णप्रज्ञता के तट को प्राप्त करने में प्रायः कष्ट की अनुभूति करती है। ‘‘दोष’’ शब्द से अभिप्राय यहां पर काम क्रोधादिक षड् मानसिक दोषों से रहित काव्य दोषों पर विचार किया जा रहा है। दोष चाहे मानसिक हो अथवा काव्यगत् उनका परिहार्य अवश्य किया जाना चाहिये।

मनुष्य के कार्य व्यापार की भांति काव्य भी कवि का कार्य या व्यापार है । अतः उसका निर्दुष्ट होना परमावश्यक है । प्रायः सभी काव्यशास्त्रियों ने गुणों से पूर्व दोषों का विवेचन किया है । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में दोष का कोई लक्षण न देकर गुणों को दोषों का विपर्यय माना है - गुणाविपर्ययादेषा माधुर्योदार्य लक्षणा

दोष को साभिप्राय परिभाषित किया है आचार्य मम्मट ने ।

मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः

आचार्य मम्मट ने 13 पद दोष, 21 वाक्य दोष, 23 दोषों का विस्तार से विवेचन किया है। जिसमें अविमृष्टविधेयांश को पद दोषों के अन्तर्गत मान है । अविमृष्टविधेयांश में वाक्य की रचना करते समय इस बात का ध्यान होना चाहिए कि वाक्य में विधेयांश का प्राधान्य अक्षुण्य बना रहे अन्यथा अविमृष्टविधेयांश हो जाता है । यथा उदाहरण दृष्टव्य है-

स्त्रस्ता नितम्वादवरोपयन्ती पुनः पुनः केसरदामकाञ्चीम्
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण द्वितीयमौर्वीमिव कार्मुकस्य ।

समास में आ जाने से प्रधानता नष्ट हो जाने से यहां अविमृष्टविधेयांश दोष हो गया है यहां विधेयाविमर्श दोष का किंचित् स्वरूप ही दिखाया गया इस दोष का विस्तृत विवेचन शोधपत्र के माध्यम से किया जायेगा ।

मुख्य शब्द– अविमृष्टविधेयांश, दोष, नाट्यशास्त्र, आचार्य मम्मट, भामह।

ग्रन्थों के परस्पर अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की रचनाओं में दोष का रह जाना स्वाभाविक है दोष से अभिप्राय यहां कामक्रोधादिक षड् मानसिक दोषों से रहित काव्य दोषों पर विचार किया जा रहा है। एक अबोध बालक के मुख से निकलती हुई वाणी भले ही चित्त को हरती हो परन्तु जब यही किसी युवा के मुख से निकलती है तोउपहास का पात्र बना देती है। बालक का घुटनों के बल चलना मां के ह्रदय को आह्लादित अवश्य करता है परन्तु एक मां के युवा पुत्र की यह स्थिति उसके कारूण्य भाव को उत्पन्न कर मां के ह्रदय को व्याकुल बना देती है। अभिप्राय यह है कि दोष चाहे शारीरिक हो अथवा मानसिक उसका परिहार अवश्य करना चाहिये

मानव के कार्य व्यापारों की भांति काव्य कवि का कार्य अथवा व्यापार है अतः उसका निर्दुष्ट होना परमावश्यक है यही कारण है कि काव्य को नियमित करने वाले समस्त काव्यशास्त्रियों ने दोष को काव्यशास्त्र विवेचना का एक महत्वपूर्ण तत्व माना है दोषों का परिष्कार करके ही गुणों का आधान किया जा सकता है।इसी तथ्य का अनुसरणकरते हुए प्रायः समस्त काव्यशास्त्रियों ने गुणों से पूर्व दोषों का विवेचन किया है।महाभाष्य के अनुसार एक भी शब्द यदि सम्यक रीति से जाना गया एवं भली भांति प्रयुक्त हुआ हो तो इस लोक एवं परलोक मे भी मनोरथों का पूरक होता है।

एकः शब्दः सुप्रयुक्तःसम्यक ज्ञातः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति।[1]

इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने जहां दोषों का विवेचन किया है वहीं दोषयुक्त काव्य की निन्दा भी एक कण्ठ से की है।

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह
स वाग्वज्रं यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुस्वरतोपराधात्।[2]

1. ऋग्वेद संहिता
2. महाभाष्य पस्पशाह्निक

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता हे कि काव्यदोष की स्थिति विषयक दो मत काव्यशास्त्रियों मे प्रचलित हैं ।

- अनुदारवादी मत
- उदारवादी मत

काव्यशास्त्रियों में जिन आचार्यों ने किञ्चित् मात्र भी दोष को सह्य नही माना है। उनके मत को अनुदारवादी मत की संज्ञा दी जा सकती है। भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, नमिसाधु इत्यादि विद्वान इसी श्रेणी में आते हैं।

काव्यलङ्कार कर्ता भामह के अनुसार काव्य में प्राप्त एक भी दोषयुक्त पद से वैसे ही निन्दित होता है, जैसे दुष्ट पुत्र से पिता।[3] भामह के अनुसार दोषयुक्त रचना से अधर्म रोग अथवा दण्ड आदि की प्राप्ति नहीं होती अपितु सदोष रचना तो साक्षात् मृत्यु ही है।

कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिर्माहुर्मनीषिणः।[4]

काव्यादर्शकार दण्डी ने भी दोषों पर चर्चा की है उनके अनुसार सम्यक् रुप से प्रयुक्त वाणी को विद्वानों ने कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु कहा है। परन्तु वही वाणी वक्ता के द्वारा दोषयुक्त प्रयुक्त होने पर उसमें गोत्व (वृषत्व) या मूर्खता को सूचित करती है।

दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति।[5]

अतः काव्य में अल्प से अल्प दोष की भी कदापि उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि अत्यन्त सुन्दर शरीर भी एक श्वेत कुष्ठ के दाग से कान्तिहीन हो जाता है।

तदल्पमपि नोवेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन
स्याद् वपुस्सुन्दरमपिश्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।[6]

3. काव्यालंकार, भामह
4. काव्यालंकार भामह-1/11
5. काव्यादर्श दण्डी- 1/6
6. काव्यादर्श दण्डी -1/7

वामन अदोषता को काव्य सौन्दर्य का उतना ही हेतु मानते हैं जितना गुणग्राहकता को। उनके अनुसार दोषों के हान एवं गुणों के आदान से ही काव्य में सौन्दर्य आता है।

स दोष गुणालंकाराहानादाभ्याम्।[7]

रूद्रट ने भी विद्वानों को दोषों से रहित एवं गाम्भीर्य से परिपूर्णवाक्य के प्रयोग की सलाह दी है।

क्षादेक्षमश्रूणं सुमतिर्वाक्यं प्रयुञ्जीत।[8]

रूद्रट के टीकाकार नमिसाधु के अनुसार काव्य समस्त अलंकारों से युक्त होता हुआ भी एक ही दोष से उसी प्रकार दूषित हो जाता है जिस प्रकार समस्त अलंकारों से सुसज्जित वधू एकाक्षी होने से।[9] इस प्रकार दोषयुक्त काव्यों की निन्दा की गयी है। परवर्ती काव्यशास्त्रियों ने अदोषता को काव्यलक्षण मे ही स्थान दे दिया है यह परम्परा सरस्वतीकण्ठाभरण से प्रारम्भ हुई।

निर्दोषं गुणवत्काव्यं ।[10]

विभिन्न काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में जहां दोष के सर्वथा त्याग का निर्देश प्राप्त होता है वहीं कुछ आचार्यों ने काव्य में दोषों की स्थिति एवं काव्यशास्त्र में दोष विवेचना को उदारवादी दृष्टिकोण से देखा। इनमें भरत,आनन्दवर्धन, महिमभट्ट विश्वनाथ प्रमुख हैं। भरतमुनि के अनुसार संसार में कोई भी वस्तु न तो गुणरहित तथा न ही दोषों से युक्त अतः काव्य अथवा नाट्य दोषों पर विशेष ध्यान नही देना चाहिये।

न हि किञ्चित् गुणहीन दोषैः परिवर्जितं न वा किञ्चित् तस्मान्नाट्य प्रकृतौ दोषा नात्यर्थतो ग्राहः।[11]

---

7. काव्यालंकारसूत्र वामन 1/13
8. काव्यालंकारसूत्र रूद्रट- 2/8
9. काव्यालंकारसूत्र रूद्रट- 1/14
10. सरस्वतीकण्ठाभरण- भोज-1/2
11. नाट्यशास्त्र,भरत-24/47

भरतमुनि का यह मत स्वाभाविक ही है संसार में कोई भी वस्तु पूर्णरूप से दोषरहित नहीं हो सकती यह स्वभावतः सिद्ध है। भरतमुनि के मत में जब पूर्णतः दोष साहित्य सम्भव नहीं है तो गुणों पर ही दृष्टिपात करना चाहिये दोषों पर नहीं महिमभट्ट ने दोषविवेचन को खलों का कार्य कहा है।

तानिदानीमखिलान् खला इव व्याख्यास्यामः।[12]

इसी प्रकार विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में मम्मट के काव्यलक्षण में प्राप्त अदोषौ पद का खण्डन करते हुए स्वीकार किया है कि यदि काव्य का लक्षण दोष रहित माना जाय तो काव्य दुर्लभ अथवा अलभ्य ही हो जायेगा क्योंकि निर्दुष्ट काव्य तो असम्भव ही है।

किञ्च एव काव्यं प्रविरलविषयं निर्विषयं वा स्यात् सर्वथा निर्दोषस्यैकान्त सम्भवात्।[13]

दोषों के यथाशक्य परिहार से उत्तमोत्तम काव्य रचना द्वारा कवि कीर्तिलाभ करें यही इस सूक्ष्म दोष विवेचन की सार्थकता एवं उपयोगिता है। आचार्य भामह का यह कथन कवियों के लिये अत्यन्त उपयोगी है कि जिस प्रकार माली यह पुष्प ग्राह्य है यह त्याज्य है यह शोभावर्धक है तथा इसका उपयुक्त स्थान है इस प्रकार चिन्तन करता हुआ माला का सावधानी पूर्वक निर्माण करता है उसी प्रकार कवियों को भी सावधान होकर काव्य में शब्दों का प्रयोग करना चाहिये।

एतद्ग्राह्यं सुरभि कुसुमं ग्राम्येतान्निशेष धत्ते शोभां विरचितमिदं स्थानमस्यैतदस्य
मालाकारो रचयति यथा साधु विज्ञाय मालां योज्य काव्येष्ववहितधियातद्वदेवाभिधानम्।[14]

दोष विवेचन का सिद्धान्त उतना ही प्राचीन है जितना कि मनुष्य स्वयं। मनुष्य स्वभावतः छिद्रान्वेशी होता है अतः दूसरों की कृतियों में दोष देखना उसका स्वभाव है वैदिक काल से ही यह मान्यता रही है कि स्वर अथवा वर्ण से भ्रष्ट शब्द यथार्थ का बोधक नहीं होता अतः वेदों की रक्षा हेतु व्याकरण का ज्ञान आवश्यक माना गया है।

रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्।[15]

---

12. व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट – पृ.183
13. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,वत्तिभाग, पृ.9
14. काव्यालंकार, भामह- 1/59
15. पस्पशाह्निक,पृ.-7

तदनन्तर शिक्षा ग्रन्थों में दोषों का विवेचन प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य शिक्षा के अध्ययन विधि प्रसंग में कहा गया है कि हस्तभ्रष्ट एवं स्वर भ्रष्ट को वेदफल की प्राप्ति नहीं होती।

इसी प्रसंग में शङ्कित, भीत, उद्धृत, अव्यक्त, सानुनासिक, काकस्वर, शीर्षदृत, स्थानविवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषयाहत, व्याकुल तथा तालुहीन इन 14 पाठदोषों तथा चुलून नौका, स्फुटदण्डी, स्वास्तिकमुष्टिका कृति तथा परशु इन सात हस्तदोषों का विवेचन हुआ है। इसी प्रसंग में वक्तृदोषों का भी उल्लेख है।[16]

इसके अतिरिक्त न्यायसूत्र में दोषों का विवेचन प्राप्त होता है, निग्रह स्थान में न्यून, अधिक, अनर्थक, अपार्थक तथा विरूद्ध 5 वाक्य दोषों का विवेचन हुआ है।[17]

कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी अकान्ति, व्याघात, पुनरूक्त, अपशब्द तथा सम्प्लव नामक लेख दोषों का वर्णन प्राप्त होता है।

अकान्ति व्याधितः पुनरूक्तमपशब्दः सम्प्लव इति लेख दोषाः।[18]

इससे स्पष्ट है कि काव्यशास्त्र में दोष विवेचन से पूर्व भी इसका एक दीर्घ इतिहास रहा है। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने घिषण नामक आचार्य को दोष विवेचन के आदि व्याख्याता के रूप में स्मरण किया है।

दोषाधिकरणं घिषणः।[19]

अभी तक सभी काव्यशास्त्रियों के दोषविषयक विचार प्रस्तुत किया गया अब दोष की परिभाषा क्या है इसका उल्लेख मम्मट काव्यप्रकाश के सप्तम उल्लास के 49 कारिका में करते हैं।

मुख्यार्थ का अपकर्ष करने वाला तत्व दोष कहलाता है रस मुख्य है तथा उसके आश्रय से वाच्यार्थ भी मुख्य है शब्द वर्णन रचना आदि वाच्यार्थ एवं रस दोनों के उपकारक हैं दोष इन सभी में रहता है।

मुख्यार्थ हतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः।[20]

---

16. याज्ञवल्क्य शिक्षा- अध्ययनविधिप्रसंग श्लोक-24
17. चरक सहिंता विमानशास्त्र, 8/24
18. अर्थशास्त्र, कौटिल्य-31/177
19. काव्यमीमांसा- राजशेखर अध्याय-1, पृ.-2
20. काव्यप्रकाश,मम्मट- 7/1

मम्मट से पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय परम्परा में प्राप्त दोष चिन्तन में सर्वप्रथम भरत मुनि आते हैं। नाट्यशास्त्र में दोष सामान्य का कोई लक्षण अथवा परिभाषा भरतमुनि ने प्रस्तुत नहीं की तथापि दोष विवेचन के अन्त में उन्होने गुणों को दोषों का विपर्यय माना है।

गुणाविपर्ययादेषा माधुर्योदार्य लक्षणा ।[21]

इससे स्पष्ट कि आचार्य भरत दोषों को भावरूप मानते हैं गुणों को अभाव रूप। नाट्य शास्त्र में दस काव्य दोषों का वर्णन है- गूढार्थ, अर्थान्तर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिप्लुतार्थ, न्यायादपेत, विषम, विसन्धि, शब्दहीन।[22]

भरत के समान दोष सामान्य का कोई लक्षण भामह ने प्रस्तुत नहीं किया है काव्यालंकार दोष विवेचन एक ही स्थान पर न होकर विभिन्न वर्गों में प्राप्त होता है।

प्रथम वर्ग- काव्यालंकार के प्रथम परिच्छेद में वर्णित नेयार्थ, क्लिष्ट, अन्यार्थ, अवाचक, अयुक्तिमत तथा गूढ़शब्दाभिधान दोष।[23]

द्वितीय वर्ग- प्रथम परिच्छेद में ही वर्णित चार वाणी दोष श्रुतिकटु, अर्थदुष्ट, कल्पनादुष्ट, श्रुतिकष्ट।[24]

तृतीय वर्ग- द्वितीय परिच्छेद के उपमा निरूपण प्रसंग में प्राप्त आचार्य मेधावी द्वारा प्रोक्तहीनता, असम्भव, लिङ्गभेद, वचनभेद, विपर्यय, अधिकता, सादृश्य रूप 7 उपमा दोष हैं।[25]

चतुर्थ वर्ग- अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय, अपक्रम,शब्दहीन, यतिभ्रष्ट, भिन्नवृत्त, विसन्धि, देशकाल, कला, लोकन्याय, गमविरोधी तथा प्रतिज्ञा, दृष्टान्तहीन दोष।[26]

दण्डी के काव्यादर्श मे तृतीय परिच्छेद में काव्य दोषों का विवेचन हुआ है काव्यादर्श का दोषविवेचन नाम क्रम तथा लक्षण सहित भामह कृत काव्यालंकार का अनुसरण करता है।

अपार्थव्यर्थमेकार्थससंशयपक्रमम्
शब्दहीनं यति भ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसन्धिकम्।[27]

---

21. नाट्यशास्त्र-भरत-16/25
22. नाट्यशास्त्र-भरत-पृ.80
23. काव्यालंकार,भामह-1/37
24. काव्यालंकार,भामह- 1/47
25. काव्यालंकार,भामह- 2/39
26. काव्यालंकार,भामह- 4/1-2

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति के द्वीतीय अधिकरण में आचार्य ने दोषों का विवेचन किया है दोषदर्शन नाम से प्राप्त उस अधिकरण के दोनो अध्यायों में कुल 20 दोषों का विवेचन प्राप्त होता है ग्रन्थ के चतुर्थ अधिकरण को द्वितीय अध्याय में 6 उपमा दोषों, का भी विवेचन किया गया है।

- पददोष- असाधु, कष्ट, ग्राम्य, अप्रतीत, अनर्थक।[28]
- पदार्थदोष- अन्यार्थ, नेयार्थ, गूढार्थ, अश्लील, क्लिष्ट।[29]
- वाक्य दोष- भिन्नवृत्त, यतिभ्रष्ट, विसन्धि।[30]
- वाक्यार्थ दोष- व्यर्थ, एकार्थ, संदिग्ध, अप्रयुक्त, अपक्रम, लोकविरूद्ध और विद्याविरूद्ध।[31]
- उपमा दोष- हीनत्व, अधिकत्व, लिङ्गभेद, वचनभेद, असादृश्य, असम्भव।[32]
- रूद्रटकृत काव्यालंकार के छठे तथा ग्यारहवें अध्याय में दोषों का विवेचन प्राप्त होता है ये चार भागों में विभक्त हैं।[33]

ध्वन्यालोक में आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि के विविध भेदों में असंलक्ष्यक्रमध्वनि अर्थात् रसध्वनि की प्रधानता स्थापित की क्योंकि ध्वनि के प्रायः सभी भेद रसादि ध्वनि के पोषक होते हैं अतः अलंकार गुण आदि भी उस रस ध्वनि की अनुकूलता होने पर ही काव्य में सौन्दर्याधायक होने वाले तत्वों की भांति ही सौन्दर्य विघातक तत्व दोष भी रस से ही सम्बद्ध हो गये।[34]

उन्होंने दोष नाम से किसी निषेध्य तत्व का वर्णन अपने काव्य में नही किया हो किन्तु काव्य की आत्मा रस ध्वनि की व्यञ्जना में बाधा पहुंचाने वाले या विलम्ब के कारणों की उन्होंने विस्तृत रूप से विवेचना की है तथा यह भी बताया है कि कैसे इनसे बचा जा सकता है।

कुन्तक ने स्पष्ट रूप से दोष विवेचन नहीं किया है ध्वन्यालोक के समान यहां भी औचित्य के ही सहृदयहृदयाह्लादकारी माना गया है वक्रोक्तिजीवितम् के अनुसार वाक्य के एक भाग में औचित्य की हीनता से सहृदय जनो की आह्लादकता की हानि होती है अतः कहा जा सकता है कि कुन्तक भी अनौचित्य को ही प्रमुख दोष मानते हैं।

वाक्यस्याप्यकदेशेऽप्यौचित्यविरहात्तद्विदाह्लाद्कारित्व हानि।[35]

---

27. काव्यादर्श-दण्डी- 3/125
28. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन 2-1-4
29. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन 2-1-10
30. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन 2-2-1
31. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन 2-2-2
32. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन 2-2-3
33. काव्यालंकार, रूद्रट, 2-2-3
34. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, 3/14
35. वक्रोक्तिजीवित,पृ.182

इसके अतिरिक्त सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रथम परिच्छेद में काव्य दोषों का विवेचन प्राप्त होता है कुल 48 दोषों का विवेचन किया गया है।[36]

व्यक्तिविवेक के प्रथम विमर्श में ध्वनि के लक्षण पर आक्षेप करने के उपरान्त महिमभट्ट ने शब्दानौचित्य विचार नामक द्वितीय विमर्श में काव्यगत दोषोंअथवा अनौचित्य पर विस्तृत व्यापक चिन्तन किया गया है।[37]

महिमभट्ट ने अनौचित्य को दो भागों में विभक्त किया है।

1- अर्थविषयक अनौचित्य 2- शब्दविषयक अनौचित्य।

आचार्य मम्मट ने भी सप्तम उल्लास में दोषों का विवेचन किया है। मम्मट ने 16 पद दोष बताये हैं।

श्रुतिकटु, च्युतसंस्कार, अप्रयुक्त, असमर्थ, निहतार्थ, अनुचितार्थ, निरर्थक, अवाचक, तीन प्रकार का अश्लील, संदिग्ध, अप्रतीत, ग्राम्य, नेयार्थ, क्लिष्ट, अविमृष्टविधेयांश, विरूद्धमतिकृत इत्यादि।[38]

21 प्रकार के वाक्य दोष गिनाये हैं- प्रतिकूलवर्णता, उपहतविसर्गता, विसन्धि, हतवृत्तता, न्यूनपदता ,अधिकपदता, कथितपदता, पतत्प्रकर्षता, समाप्तपुनरात्तता, अर्थान्तरैकवाचकता, अभवन्मतसम्बन्ध, अमतयोग, अनभिहितवाच्यता, अस्थानसमासता, सङ्कीर्णता, गर्भितता, प्रसिद्धविरोध, भग्नप्रक्रमता, अक्रमता, अमतरार्थता।[39]

23 अर्थदोष- अपुष्ट, कष्ट, व्याहत, पुनरूक्त, दुष्क्रम, ग्राम्य, सन्दिग्ध, निर्हेतु, प्रसिद्धिविरूद्ध, विद्याविरूद्ध, अनवीकृत, नियम में अनियम, अनियम में नियम, विशेष में अविशेष, अविशेष में विशेष रूप परिवृत्त, साकाङ्क्षता, अपदयुक्तता, सहचरभिन्नता, प्रकाशितविरूद्धता, विध्ययुक्तत्व, अनुवादयुक्तत्व, त्यक्त पुनः स्वीकृत और अश्लील(अर्थ दुष्ट होता है)।[40]

13 रसदोष- व्यभिचारी भावों, रसों अथवा स्थायिभावों का अपने वाचकशब्द के द्वारा कहना (स्वशब्दवाच्यता), अनुभाव, विभाव की कष्टकल्पना से अभिव्यक्ति, रस के प्रतिकूल विभाव आदि का ग्रहण करना, रस की बार-बार दीप्ति, रसका अनवसर में विस्तार कर देना, अनवसर में विच्छेद कर देना, अप्रधान अङ्ग रस का भी अत्यधिक विस्तार कर देना, प्रधान रस को त्याग देना, प्रकृतियों(पात्रों)

---

36. सरस्वतीकण्ठाभरण,1/46
37. व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट,7/53
38. काव्यप्रकाश, मम्मट 7/55,56,57
39. काव्यप्रकाश, मम्मट 7/60,61,62
40. काव्यप्रकाश, मम्मट,7/64

का विपर्यय कर देना, अनङ्ग (अर्थात) जो प्रकृत रस का उपकारक नहीं है। इस प्रकार ये रस में रहने वाले दोष हैं।[41]

अविमृष्टविधेयांश दोष

प्रत्येक वाक्य में दो भाग होते हैं एक उद्देश्य भाग और दूसरा विधेय भाग। राम जाता है, इस वाक्य में राम उद्देश्य भाग है और जाता है यह विधेय भाग है इन दोनो भागों में विधेयांश प्रधान जाता है इसलिये प्रत्येक वाक्य की रचना करते समय उस बात का ध्यान होना चाहिये कि वाक्य में विधेयांश का प्राधान्य अक्षुण्ण बना रहे जहां इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता और असावधानी इस प्रकार की वाक्य रचना कर दी जाती है, जिसमें विधेयांश का प्राधान्य नष्ट हो जाता है। वहां अविमृष्ट विधेयांश दोष हो जाता है इस प्रकार की वाक्य रचना प्रायः विधेयांश को समास में डाल देने से हो जाती है। क्योंकि समास में कहीं पूर्व पदार्थ का प्राधान्य होता है कहीं उत्तर पदार्थ का और कही अन्य पदार्थ का। विधेय पद के उससे भिन्न स्थल पर आ जाने से उसका प्राधान्य नष्ट हो जाता है इसलिये अविमृष्टविधेयांश को समासगत दोष कहा जाता है । इसी अविमृष्टविधेयांश दोष को महिमभट्ट ने विधेयाविमर्श दोष के नाम से वर्णित किया है।

आचार्य महिमभट्ट के अनुसार विवक्षित रसादि की प्रतीति में विघ्नविधायक दोष कहलाते हैं।[42] वे दो प्रकार से हो सकते हैं। अर्थ विषयक और शब्द विषयक। इनमें अर्थ विषयक दोषों को अन्तरङ्ग तथा शब्दविषयक दोषों को बहिरङ्ग दोष कहा जाता है।[43] उनके अनुसार रस निष्पत्ति के हेतु विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों की यथावत योजना न होने से रस निष्पति में बाधा होती है अथवा विलम्ब होता है, अतएव सह्रदय जन काव्य में इनकी अयथावत् योजना साक्षात् रस निष्पत्ति में बाधा तथा विघ्न उपस्थित करती है।

महिमभट्ट ने बहिरंग दोषों के विवेचन का प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम विधेयाविमर्श दोष की विवेचना की है। इनके अनुसार प्रधान रूप से प्रतिपाद्य अर्थ यदि किसी भी कारण अप्रधान होने लगे तो वहां विधेयाविमर्श दोष होगा। जब अप्रधानता चार कारणों से हो सकती है।[44]

- समास द्वारा
- आख्यात अथवा कृत् प्रत्यय के अनुचित प्रयोग द्वारा
- यत् तथा तत् आदि पदों के अव्यवस्थित प्रयोग द्वारा
- क्रम विशेष द्वारा।

विधेयाविमर्श दोष के उदाहरण में महिमभट्ट कुन्तक का श्लोक उद्घृत करते हैं।

41. काव्यप्रकाश, मम्मट,7-65
42. व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट,पृ.152
43. व्यक्तिववेक, महिमभट्ट,पृ.132
44. व्यक्तिववेक, महिमभट्ट,पृ.153

संरम्भः करिकीटमेघशकलोद्द्शेन सिंहस्य यः
सर्वस्यैव स जातिमात्रनियतो हेवाकलेशः किल
इत्याशाद्विरदक्षयाम्बुदघटबन्धेऽप्यसंरब्धवान्
योऽसौ कुत्र चमत्कृतेरतिशयं यात्वम्बिकाकेसरी।[45]

- महिमभट्ट ने प्रस्तुत श्लोक में तीन प्रकार का विधेयाविमर्श दोष माना है।
- प्रसज्य प्रतिषेध में नञ् के साथ समास करने से, असंरब्धवान् पद में।
- यत् तत् के अनुचित प्रयोग से योऽसौ पद में तथा षष्ठीसमास की अप्राप्ति से समास विधान से अम्बिकाकेशरी पद में।

इसी प्रकार मम्मट के अविमृष्टविधेयांश दोष का उदाहरण-
विधेय पद के बहुव्रीहि समास में अन्तर्भूत होने से अविमृष्टविधेयांश दोष किस प्रकार होता है-

मूर्ध्नामुद्वृत्तकृत्ताविरलगलद्रक्तसंसक्तधारा
धौतेशाङ्घ्रिप्रसादोपनत जयजगज्जात मिथ्या महिम्नाम्
कैलासोल्लासनेच्छाव्यतिकर पिशुनोत्सर्पिदर्पोद्धुराणां
दोष्णां चैषां किमेत्फलमिह नगरी रक्षणे यत्प्रयासः।[46]

यहां मिथ्यामहिमशालित्व उद्देश्य नहीं अपितु विधेय है इसलिये उसकी प्रधानता की रक्षा के लिये समास में नहीं डालना चाहिये था। समास में आ जाने से प्रधानता नष्ट हो जाने के कारण अविमृष्टविधेयांश दोष हो गया ।

कर्मधारय समास में अन्तर्भाव का उदाहरण –

स्रस्तां नितम्वादवरोपयन्ती पुनः पुनः केशरदामकाञ्चीम्
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरणेन द्वितीयमौर्वीमिव कार्मुकस्य।[47]

यहां मौर्वी के द्वितीयत्वमात्र की उत्प्रेक्षा है इसलिये वह विधेय है किन्तु समास में रख देने से यहां दोष हो गया है।

वपुर्विरूपाक्षामलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु
वरेषु यद् वालमृगाक्षि! मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।[48]

---

45. व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट,पृ.146
46. काव्यप्रकाश, मम्मट उदा-149
47. काव्यप्रकाश, मम्मट- उदा-160
48. काव्यप्रकाश, मम्मट- उदा-161

यहां जन्म की अलक्ष्यता विधेय है। अलक्ष्यता पद को समास में रखने से अविमृष्टविधेयांश दोष हो गया है यह बहुब्रीहि समास में अन्तर्भाव का उदाहरण है।

नञ् समास में अविमृष्टविधेयांश का उदाहरण-

निषेधार्थक नञ् दो प्रकार का होता है- एक प्रसज्य प्रतिषेध नञ् दूसरा पर्युदास नञ्।जहां निषेध की प्रधानता होती है वहां प्रसज्य प्रतिषेध नञ् और प्रतिषेध की अप्रधानता में सदृश पदार्थ के बोध के लिये पर्युदास का प्रयोग होता है। नञ् किसी अन्य पद के साथ समस्त हो जाने पर सदा पर्युदास बन जाता है, उसमें प्रतिषेध की प्रधानता नहीं रहती है, अतः प्रतिषेध की प्रधानता यदि पर्युदास अर्थात् समासगत नञ् का प्रयोग किया जाता है तो वहां अविमृष्टविधेयांश दोष हो जाता है नञ् का उदाहरण प्रस्तुत किया है मम्मट ने 3 श्लोकों में दिया है।

आनन्दसिन्धुरतिचापलशालिचित्तसन्दाननैकसदनं क्षणमप्यमुक्ता
या सर्वदैव भवता तदुदन्तचिन्तातान्ति तनोति तव सम्प्रति धिग् धिगस्मान्।[49]

यहां न मुक्ता यह निषेध विधेय है अतः समास रहित प्रसज्य प्रतिषेध नञ् का ही प्रयोग होना चाहिये था परन्तु यहां अमुक्ता इस रूप से समास करके पर्युदास नञ् बना दिया है इसलिये अविमृष्टविधेयांश दोष है। अमुक्ता इस रूप मे पर्युदास का प्रयोग तो तभी हो सकता था जब अमुक्ता का अनुवाद करके अन्य किसी का विधान नहीं किया गया हैअपितु अमुक्तत्व ही विधेय है अतः प्रसज्य प्रतिषेध ही होना चाहिये था। समस्त अमुक्ता पद का प्रयोग दूषित है।

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम्
अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत प्रिया न ममोर्वशी।[50]

कालिदास के उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में प्रतिषेध की प्रधानता है तथा विधि की अप्रधानता , साथ ही नञ् का सम्बन्ध क्रिया पद से है।

पर्युदास नञ् का उचित प्रयोग-

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः
अगृध्नुराददे सोऽर्थानसक्तःसुखमन्वभूत्।[51]

---

49. काव्यप्रकाश, मम्मट- उदा-162

50. काव्यप्रकाश, मम्मट उदा-163

51. काव्यप्रकाश, मम्मट, उदा-164

यहां अत्रस्तत्वादि को उद्देश्य बनाकर अपनी रक्षा आदि क्रियाओं का विधान किया गया है। अत्रस्त आदि पदों मेंपर्युदास नञ् का प्रयोग उचित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. काव्यप्रकाशआचार्यविश्वेश्वर, वाराणसीज्ञानमण्डल,लिमिटेड।
2. साहित्यदर्पण, शेषराजशर्मारेग्मीचौखम्बा,संस्कृतसीरीज,वाराणसी।
3. व्याकरणमहाभाष्य, (पस्पशाह्निकं) पण्डितयुधिष्ठिरमीमांसक,चौखम्बाविद्याभवन,वाराणसी।
4. काव्यमीमांसा, श्रीकृष्णमणित्रिपाठी,चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन,वाराणसी।
5. महिमभट्टबृजमोहनचतुर्वेदी, नेशनलपब्लिशिंगहाउस,दरियागंज,दिल्ली।
6. नाट्यशास्त्रबृजमोहनचतुर्वेदी, विद्यानिधिप्रकाशन, दिल्ली।
7. व्यक्तिविवेक, ब्रह्मानन्दत्रिपाठीचौखम्बासुरभारती,प्रकाशन, वाराणसी।
8. कौटिलीयअर्थशास्त्रम्,वाचस्पतिगैरोला,चौखम्बा,विद्याभवन,वाराणसी।
9. वक्रोक्तिजीवितीम्,परमेश्वरदीन पाण्डेय, चौखम्बाविद्याभवन,वाराणसी।
10. ध्वन्यालोक,रामसागरत्रिपाठी,मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली।
11. काव्यालंकार,देवेन्द्रनाथशर्मा,बिहारराजभाषापरिषद।
12. ऋग्वेद संहिता, पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी।
13. काव्यालङ्कार, रमण कुमार शर्मा, विद्यानिधिप्रकाशन, दिल्ली।
14. काव्यालंकारसूत्राणि, हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन,वाराणसी।
15. चरक संहिता, विद्याधर शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।